हिंदी दलित कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री जीवन का संघर्ष

पवन कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली मो.9415497300

शोध सार: आज स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, पसमांदा विमर्श, विकलांगों का विर्मश,आदिवासी विमर्श आदि के साहित्यिक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि मसलों पर बहस हो रही है लेकिन दलित एवं गैर दलित के शोषण में समानता होने के बावजूद उनमें कुछ भिन्नता होने के कारण दलित स्त्रियों की कुछ समस्याएँ छूट जा रही हैं। जिन्हें साथ लेकर चलना जरूरी है। गैर दलित स्त्री की अपेक्षा दलित स्त्री को एक नये दृष्टिकोण से देखने की जरूरत है, क्योंकि जिस दृष्टिकोण से गैर दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए पितृसत्तात्मक समाज से लड़ रहीं हैं और जिस स्तर से अपने अधिकारों की मांग कर रही हैं, उस स्तर से दलित स्त्रियों की कुछ समस्यायें छूट रहीं हैं । हालांकि कुछ पढ़ी-लिखी दलित स्त्रियाँ सम्पूर्ण दलित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व तो कर रहीं हैं, उनकी संख्या गैर दलित स्त्रियों की अपेक्षा बहुत कम है । इसका मूल कारण दलित स्त्रियों में उच्च शिक्षा का अभाव और दलित स्त्री का सीमित दायरे में आन्दोलन में भाग लेना। हम रमणिका गुप्ता द्वारा संग्रहित कुछ चुनिंदा हिंदी दलित कहानियों पर विचार करते हुए उनमें निहित दलित स्त्री के जीवन संघर्ष का समिक्षा करने का प्रयास करेंगे।

बीज शब्द: वर्ण-व्यवस्था, शोषित, सामाजिक समानता, स्त्री चेतना , हैवानियत, पितृसत्तात्मक समाज ।

मूल आलेख: दलित साहित्य वह लेखन है जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में तथा उसके विपरीत मूल्यों के प्रति संघर्ष करने वाले मनुष्यों से प्रतिबद्ध है। दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता समानता एवं बन्धुत्व के भाव को सबसे ऊपर रखता है। रमणिका गुप्ता कहती हैं कि "दलित साहित्य उस दबी हुयी अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन, जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है।"[1] मराठी लेखक बाबूराव बागुल का कहना है कि "दलित साहित्य का केन्द्रबिन्दु मानव है, और वह मानव के ही इर्द गिर्द घूमता है।"[2]

हिन्दी दलित कहानियों में सामाजिक पीड़ाएं एवं शोषण के विविध आयाम खुलकर तर्कसंगत रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। सदियों से उपेक्षित तिरस्कृत, शोषित, दलित समाज में शिक्षा के द्वारा जैसे-जैसे चेतना का संचार होता गया, वह अपने आत्मसम्मान के लिए उठ खड़े हुए। इस चेतना के बीजारोपण का श्रेय डॉ भीमराव अम्बेडकर एवं ज्योतिबा फुले को ही जाता है। दलित समाज अपने ऊपर हुए अमानुषिक अत्याचार को लेखन का विषय बनाकर एकांगी, सामाजिक व्यवस्था को बेनकाब करने लगा। जिससे वर्णव्यस्था की नींव डगमगाने लगी। दलित कहानियों में यह व्यथा भिन्न-भिन्न रूप में सामने आती है और सामाजिक समानता का जयघोष करती है। रमणिका गुप्ता इन कहानियों के बारे में कहती हैं कि " इन कहानियों में दलित जीवन के कई कोण हैं-जीवन से जूझने के, ज़िन्दा रहने के, पीड़ा सहने के और उससे उबरने के। समय के लम्बे अन्तराल को छूती हैं ये कहानियाँ इसलिए दलित चेतना के उदय से लेकर संकल्प बनने तक का विकास इनमें उजागर होता है। हीन भावना से उबारना, निर्मित होता आत्मसम्मान, तनकर खड़ी होती अस्मिता और परिवर्तन का संकल्प विकसित होता नज़र आता है इनमें।"[3] दलित कहानियों में गुलामी का अहसास भी डंक मारता हुआ दिखाई पड़ता है। तो, उस अहसास की मुक्ति की कुलबुलाहट नज़र आती है। रमणिका गुप्ता कहती है कि "जाति नहीं मनुष्य हूँ मैं- समाज का साझेदार हूँ मैं-औरों की तरह मेरी भी जीने की शर्तें हैं।"[4]

दलित कहानियों में दलित स्त्री के पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से शोषण का यथार्थ अंकन हुआ है। दलित स्त्री का दर्द दलित पुरुष के दर्द से कहीं बड़ा है। एक तो स्त्री होने का दंश वह झेलती ही है, ऊपर से दलित स्त्री होने का दर्द भी उसे झेलना पडता है। दलित समाज में नारी की स्थिति बहुत ही दयनीय रही है क्योंकि उस पर दलित पुरुष का नहीं बल्कि सवर्ण पुरुषों का अधिकार समझा जाता है। तथाकथित सवर्ण समाज दलित स्त्री के युवावस्था में प्रवेश करते ही उस पर गिद्ध-दृष्टि रखना आरम्भ कर देता है। और अवसर मिलते ही अपने दम्भ के नीचे उसकी आवरू कुचलने में वह एक पल भी नहीं विचार करता है। उस समय न तो छुआछूत आड़े आती है, न धर्म और न ही जाति उनका तो यह भी मानना था कि दलित पुरुष को सुन्दर स्त्री रखने का कोई अधिकार ही नहीं है। दलित स्त्रियों के आत्मिक दर्द को महसूस करके ही कौशल्या बैसंत्री कहती है कि "दलित स्त्रियों को दोहरा अभिशाप झेलना पड़ता है। दलित स्त्रियों को तो कभी मनुष्य समझा ही नहीं गया, वह हमेशा से सार्वजनिक सम्पत्ति ही समझी जाती रही है। सामाजिक विषमता गरीबी, भूख, अभाव की मजबूरी का फायदा उठाकर संवर्ण पुरुष उनका यौन शोषण करता रहा और इनकी अस्मिता को पाँव तले रौंदता रहा। यह समाज दलित स्त्रियों को कभी सम्मान के योग्य नहीं समझा। हमेशा से वह काम में आने वाली एक वस्तु मात्र ही समझी जाती रही।"[5] दलित महिला दलितों में भी दलित मानी गई है। इसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरुष प्रधान समाज ही जिम्मेदार हैं। दलित महिला के स्याह जीवन का जितना कटु ठोस एवं यथार्थ अनुभव दलित महिला के पास होगा, उतना किसी गैर दलित महिला के पास नहीं हो सकता? आज तक

स्त्रीवादी आन्दोलन और उससे जुड़ी संस्थाओं का नेतृत्व सवर्ण स्त्रियों के हाथ में रहा है इसलिए वहाँ दलित स्त्री की मुक्ति के मुद्दे केन्द्र में नहीं हैं, इसलिए दलित स्त्री को वह सम्मान नहीं मिला जो मिलना चाहिए। भारत में दलित महिलाएं पूरी तरह हाशिये पर धकेल दी गयी है। दलित महिलाएं आज भी हिंसा की शिकार हो रही है और उनके साथ होने वाली ज्यादतियों में शारीरिक प्रताडना, यौन उत्पीडन बलात्कार घरेलू हिंसा आदि शामिल हैं परन्तु अब दलित में शिक्षा के द्वारा चेतना आने से वह भी अपने अधिकार के लिए उठ खड़ी हुई है। कल की दलित स्त्री मीन थी सारे अत्याचार को सिर झुकाए सहती रहती थी, परन्तु आज वह स्त्री डॉ अंबेडकर के विचारों से ऊर्जा लेकर अस्मिता के लिए निरन्तर संघर्षरत है। दलित स्त्री का दुःख चक्रव्यूह जैसा है जिसके पीछे हजारों वर्ष की परम्परा है परन्तु आज की दलित स्त्री इस परम्परा को नकारती है। अधिकांश दलित महिलाएं सवर्ण अत्याचारियों का मुकाबला तो कर लेती हैं परन्तु यही अपने घर के पुरुषों द्वारा शोषित उत्पीडित रहने के लिए मजबूर होती हैं। पुरुषों को हमेशा से यही लगता है कि वे रोटी कपड़ा देकर स्त्रियों का उद्धार करते हैं, परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि इसके अतिरिक्त स्त्रियों को आत्मसम्मान की भी जरूरत है।

दलित कहानियों में दलित स्त्रियों के शोषण, संघर्ष, चेतना आत्मसम्मान तथा अपनी अस्मिता के लिए उठाये गये महत्त्वपूर्ण कदम का पूरी संवेदना के साथ यथार्थ अंकन हुआ है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गाँव' एकदलित स्त्री कबूतरी की अस्मिता के तार-तार होने की करुण कथा है। सवर्णों का दम्भ एक स्त्री को मानसिक रूप से विक्षिप्त बना देता है। अपनी श्रेष्ठता और वर्चस्व के सामने किस प्रकार सवर्ण दलितों की आबरू और आत्मसम्मान को रौंद डालते हैं, इसका बहुत ही यथार्थ एवं हृदयवेधक चित्रण इस कहानी में हुआ है। अपने गाँव की आबरु को पूरे गाँव में नंगा घुमाता देख करके भी भयभीत विवश, कमजोर गरीब दलित कुछ नहीं कर पाते हैं। वह सवर्णों के अत्याचार को सहने के लिए अभिशप्त है। इस कहानी में नवयुवकों की चेतना का बीज भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह न्याय के लिए कानून का दरवाजा भी खटखटाते हैं, परन्तु वहीं पर उस उत्पीडित स्त्री को और अधिक उत्पीड़न दिया जाता है। उसके साथ पूरी दलित बस्ती को भी कानून का अत्याचार सहना पड़ता है। कबूतरी अपने साथ हुए अत्याचार का जिम्मेदार ठाकुरों को ही नहीं पूरे गाँव को भी मानती है क्योंकि पूरे गाँव के सामने उसकी आबरु तार-तार होती रही और पूरा गाँव खड़ा देखता रहा। "ख़ौफ़ खाई आँखों ने कबूतरी को भीतर आते तो देखा, पर किसी की उससे निगाहें मिलाने की हिम्मत न हुई, सबकी आँखें शर्म में डूबी थीं। सबके सब देखते-देखते सारे गाँव में कबूतरी को नंगा घुमाया गया और वे कुछ न कर पाए। कहाँ गई रिश्तों की गरिमा, एक दूसरे के प्रति सुरक्षा भाव? सभी तमाशबीन हो गए थे। तमाशबीन होना उनकी विवशता बन गई थी।"[6]

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' जो सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी गई है परन्तु इसकी मुख्य स्त्री पात्र सिलिया के मानसिक हलचल के बीच उसका अन्तिम साहसपूर्ण निर्णय बहुत प्रभावशाली है वह समाज के दोहरे चरित्र को बखूबी जानती है इसलिए षडयन्त्रकारी सवर्ण नेता के विवाह का प्रलोभन ठुकराकर स्वयं शिक्षा के द्वारा अपना तथा अपने समाज के उत्थान का प्रण करती है। स्वयं समाज में स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने का प्रण करती है। "हम क्या इतने भी लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहं भाव है। उन्हें हमारी जरूरत है, हमको उनकी जरूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहें। पढ़ाई करूँगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगा। उन सभी परम्पराओं के कारणों का पता लगाउँगी, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सिद्ध करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं। न ही अपमान सहूँगी।.....इन बातों का मन-ही- मन चिंतन-मनन करती सिलिया, एक दिन अपनी माँ और नानी के सामने कहने लगी, 'मैं शादी कभी नहीं करूँगी।"[7]

रत्नकुमार साम्भरिया की कहानी 'फुलवा' डॉ अम्बेडकर के सिद्धान्त 'शिक्षित बनो संगठित हो और संघर्ष करो' तथा बुद्धदर्शन 'अप्प दीपो भव' को चरितार्थ करती है। फुलवा कभी गाँव के जमींदारों के यहाँ चाकरी करती थी परन्तु उनके अत्याचार और शोषण से तंग आकर अपने पति की मजदूरी करके अपने बेटे को खूब पढ़ाती है। फलस्वरूप इसका बेटा अफसर बन जाता है तो वहीं गाँव का पण्डित जो कभी फुलवा की बात-बात पर बेइज्जती करता था वह फुलवा के घर अपने बेटे की नौकरी के लिए पैरवी हेतु आता है, और कहता है कि "दादी, आपका पोता है न दीप सिंह। उसने पाँच-छह साल पहले मैट्रिक पास कर ली थी। अब मारा-मारा घूम रहा है। वह थोड़ा रुककर बोला, दादी, बीघा जमीन थी मेरे बाप के नाम। हम पाँच भाइयों में बँट गई, बीस-बीस बीघा। जमींदार नहीं रही अब। दीप सिंह को कहीं नौकरी पर चिपकवा दो।"[8] फुलवा की स्थिति में जो परिवर्तन हुआ वह उसकी चेतना लगन और संघर्ष के फलस्वरूप ही सम्भव हो पाया। रमणिका गुप्ता कहती है कि "रत्न कुमार सांभरिया की 'फुलवा' के पंडित को अंत में यह अहसास हो ही जाता है कि दलित अब दलित नहीं है जैसे पहले था, इसलिए पंडित को अपने बेटे की नौकरी पानी है तो उसे फुलवा के घर लौटना ही पड़ेगा, उसके एस.पी. बेटे से पैरवी करवाने के लिए, वह समझ जाता है-नदी पार करना है तो नौका को सिर पर लादकर ले जाना ही पड़ेगा।"[9]

गौरीशंकर नागदेश की कहानी 'जंगल में आग' राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले दलित स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार को लेकर लिखी गई है। इसमें की प्रमुख दलित स्त्री पात्र फूलतोड़नी जो विषम परिस्थितियों में संघर्ष करती हुई राजनीतिक क्षेत्र में समाज सुधारक निर्मल लाल द्वारा लायी जाती है। परन्तु वही निर्मल लाल उसे नशे की गोलियाँ खिलाकर उसका बलात्कार करता है. परन्तु उस समय फूलतोड़नी मौन रह जाती है। विधानसभा के टिकट के लिए

निर्मल लाल फूलतोडनी को वरिष्ठ मंत्री जगनलाल से मिलवाते हैं। पहले दिन से ही जगनलाल की गिद्ध दृष्टि फूलतोडनी पर लगी रहती है। महिला विधायिका फूलतोड़नी देवी की सुरक्षा में आयी दलित स्त्री बसमतिया की व्यथा जब फूलतोड़नी सुनती है तो उसे वह अपनी ही कथा लगती है। एक दिन मैनेजिंग कमेटी से जब फूलतोड़नी आती है तो मंत्री जगनलाल असामान्य अवस्था में पाये जाते हैं और बसमतिया अपनी आबरु के बचाव में विरोधरत उस समय फूलतोड़नी का गुस्सा अंगारे की तरह दहकने लगता है और वह मंत्री जगनलाल की हत्या कर देती है। "जेल के महिला वार्ड में फुलतोड़नी देवी की उटपटांग हरकतों से उन्हें पागल भी करार कर दिया जा सकता है। मसलन वे जेल में बार-बार एक वाक्य दुहराती जा रही है-मैंने जंगल में आग लगा दी है, मैंने जंगल में...।"[10] लोग उसे पागल घोषित कर देते हैं। परन्तु सचमुच उसने इस हैवानियत, दरिन्दगी भरे जंगल में अपने साहस, चेतना द्वारा स्त्री अस्मिता के लिए आग लगा दी।

कुसुम वियोगी की कहानी 'अन्तिम बयान' में एक दलित स्त्री के द्वारा अपने साथ होने जा रहे अत्याचार के खिलाफ साहसयुक्त महत्त्वपूर्ण कदम उठाये जाने की कथा है। वही साहस समाज की अन्य स्त्रियाँ भी कर सकें। तो आए दिन होने वाली बलात्कार की घटनाएं न सुनने को मिलें। अंतरो एक दलित लड़की है, जो घास काटने अन्य स्त्रियों के साथ खेत में जाती है रास्ते में सवर्ण लड़का राजेन्द्र रोज परेशान करता है। किसी तरह हर दिन बचकर वह निकल जाती है परन्तु एक दिन वह बन्दूक लेकर खेत में आ जाता है, जिससे डरकर सारी स्त्रियाँ भाग जाती हैं। वह अंतरों के साथ जबरदस्ती करने की कोशिश करता है। उस समय अंतरो सारा मय संकोच, विवशता भूलकर स्वयं का शोषण होने से पूर्व राजेन्द्र का पुरुषत्व ही हंसिया से काट देती है और उसकी लोश कुएं में डाल देती है। पुलिस द्वारा छानबीन होने पर उसकी लाश का पता चलता है तो राजेन्द्र की अवस्था देख कर लोग दंग रह जाते हैं। सबका संदेह अंतरों पर ही जाता है, परन्तु कारण पता नहीं चलता। पुलिस अंतरो का बयान चाहती है तो अंतरा बयान और प्रमाण के रूप में राजेन्द्र का पुरुषत्व पुलिस को सौंप देती है। जंगल के समान उगी भीड़ में आकर बोलती है। कि "गाँव वालों सुनों। दरोगा को बयान चाहिए तो सुनो मेरा बयान।...अतरो ने कागज़ के बंडल में से निकालकर राजेंद्र का काटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया। "[11]

कुसुम मेघवाल की कहानी 'अंगारा' में सवर्णों द्वारा शोषित, उत्पीडित अंगारा बनी जमना की करुण कथा है। जिसे सवर्ण अपनी हवस की भूख शांत करने के लिए खेत से उठा ले जाते हैं तथा बहुत दिनों तक अंधेरी कोठरी में बंद करके सामूहिक बलात्कार करते हैं। वहाँ पर जमना की चीत्कार, उसके आंसू, उसका दर्द सुनने वाला कोई नहीं रहता। वह लोग रोज नशे में आकर उसके शरीर को रौंदकर चले जाते हैं। एक दिन अत्याचारियों के नशे में अधिक धुत होने के कराण जमना किसी तरह कोठरी से निकल कर अपने गाँव चली आती है, परन्तु गाँव वाले उस पर व्यंग्य बाण कसते हैं। घर आकर अपने साथ हुए अन्याय को वह माँ तथा भाई से बताती है तो उसका भाई प्रतिशोध लेने को उठ खड़ा होता है। कानून भी इनकी कोई सहायता नहीं करता है उल्टा यह बात सवर्णों तक पहुँचा आता है। सवर्णों को इस बात का पता लगते ही वह पूरे गाँव को धमकी देते हैं कि जो उन्होंने जमना के साथ किया, वही सबकी बहू बेटियों को साथ करेंगे। अपनी स्थिति को नियति मान बैठे बुजुर्ग उनके सामने घुटने टेक देते हैं, परन्तु नवयुवक विद्रोह के लिए उठ खड़े होते हैं उनमें युद्ध छिड़ जाता है। जमना का भाई हीरा सुमेर सिंह को धराशायी कर देता है, तब गाँव के अन्य लोग भी उसे पीटते हैं। यह सब देखकर तथा अपने साथ हुए अत्याचार को याद कर अंगारा बनी जमना दराती लाकर सुमेर सिंह का पुरुषत्व ही अलग कर देती है। "अंगारा बनी जमना दौड़ी-दौड़ी घर में गई और कोने में पड़ी दराती उठा लाई, सरकार और पुलिस जिसे सजा नहीं दे पाई, उसे जमना ने दे दी। अपना प्रतिशोध पूरा किया।... अब वह किसी अछूत ग़रीब लड़की की इज्जत से नहीं खेल पाएगा। उसके किए की इतनी ही सजा काफ़ी थी।"[12] जो सजा अपराधी को कानून भी नहीं दे सका, उसे जमना ने देकर दिखाया।

कावेरी की कहानी 'सुमंगली' एक दलित मजदूर स्त्री सुगिया के जीवन की आखे छलछला देने वाली करुण कथा है। समाज में मजदूर स्त्रियों का ठेकेदारों मालिकों द्वारा किस प्रकार शोषण किया जाता है, इस कहानी में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। मजदूर वर्ग अपनी मेहनत, कला, खून-पसीने से उच्च वर्ग के लिए सुविधा मुहैया करता है और इसके बदले में एहसान फरामोश तथाकथित सवर्ण समाज उनके साथ बदसलूकी करता है, स्त्रियों के शरीर को अपनी हवस का शिकार बनाता है तथा पूरी तरह शरीर का रक्त चूसकर रिस-रिसकर मरने के लिए यूं ही तड़पता छोड़ देता है। इसे कहानी में अनाथ सुगिया के शरीर को ठेकेदार बचपन से ही कुचलता आता है। मात्र बारह वर्ष की अवस्था में सुगिया का बलात्कार करके खून से लतपथ दर्द में कराहता छोड़ देता है तब से सुगिया के साथ यह सिलसिला अनवरत चलने लगता है, सभी लोग ठेकेदार के डर से इस अन्याय को मुँह बंद करके देखने को विवश होते हैं। सुगिया ठेकेदार की रखेल कहलाने लगती है परन्तु चौदह साल मे जब यह गर्भवती हो जाती है तो बदनामी के भय से दरिन्दा ठेकेदार एक दलित मजदूर दखना को डरा धमकाकर सुगिया से शादी करने पर विवश कर देता है। तीन मंजिले मकान के निर्माण के समय उस पर से दखना की गिरकर हुई मृत्यु के बाद सुगिया का जीवन फिर से अन्धकारमय हो गया अपने जीवन की गाड़ी खीचती सुगिया के अपने बीमार बच्चे के इलाज के लिए ठेकेदार के यहाँ पैसे मांगने जाने पर वह आततायी ठेकेदार उसके बीमार बच्चे को फेंककर उसके शरीर को रौंदकर अपनी हवस पूरी करता है तथा मौत की नींद उस बच्चे के सो जाने पर सुगिया को दुत्कार कर अपने यहाँ से भगा देता है। अपने मरे हुए बच्चे को लेकर सुगिया पागलों सी भटकती है परन्तु सभी जगह केवल उसके शरीर को नोचने

वाले दरिन्दे ही नजर आते हैं। कोई उसकी मदद करने वाला नहीं दिखाई देता। विवश होकर सुगिया अपने बच्चे के साथ अपनी इच्छाओं का भी अन्तिम संस्कार कर देती है। शोषित, प्रताड़ित, हताश, बीमार सुगिया सांसो की डोरी कटने तक एक टूटी झोपड़ी में मंगली कुतिया को साथी बनाकर जीवन के बचे दिन काटने को अभिशप्त होती है। सुगिया कहती है कि "मंगली तुझमें और मुझमें क्या फ़र्क़ है। तू भी जीवन से हारी, मैं भी हारी। जिएँगे साथ, मरेंगे साथ। तेरे और मेरे दिल को समझने की कोशिश किसने की? किसी ने तो नहीं।"[13]

दलित स्त्रियों के जीवन का दर्द, उनके साथ हुए अत्याचार के घाव की कराह वही महसूस कर सकती है और वही अपने इस कटु अनुभव को अपने शब्दों में बया कर सकती है। दलित स्त्रियों के साथ सदियों से ही सवर्ण-अवर्ण पुरुष अत्याचार करता आया है। परन्तु कभी उसे सजा का भागी नहीं माना गया, हमेशा दोष स्त्रियों का ही दिया जाता रहा। उनके चरित्र पर भी उगली उठायी जाती रही। बाहर से लेकर घर के पुरुषों द्वारा भी दलित स्त्रियाँ शोषित, उत्पीड़ित होती रही हैं। उनकी अस्मिता, उनका आत्म-सम्मान उनकी आबरू पर कभी किसी का ध्यान ही नहीं जाता, जैसे यह सब चीजें उनके लिए है ही नहीं। वह हमेशा से भोग्या और सार्वजनिक सम्पत्ति ही समझी जाती रही हैं। एक दलित स्त्री का बलात्कार होने के बाद भी उसे उपहास का विषय बनाया जाता है, उसे न्याय दिलाने की जगह उसके चरित्र, उसके कुल को कलंकित किया जाता है। उसकी गलती न होने पर भी सजा समाज द्वारा उसी को दी जाती है, समाज द्वारा व्यंग्य बाण कसे जाते हैं। उसका जीना दूष्कर कर दिया जाता है और वहीं पर अपराधी पुरुष शान से सिर उठाकर चौतरफा ठहाका लगाता है। जेल में सजा काटकर आने के बाद भी वह ठाठ से शादी करके ससम्मान जीवन यापन करता है। परन्तु वह स्त्री जिसका सर्वस्व लुट जाने के बाद भी घुट-घुटकर जीवन जीने को अभिशप्त होती है। उसका कोई दोष न रहते हुए भी कोई पुरुष उससे विवाह करने को तैयार नहीं होता है। इस दोहरी नैतिकता और दोहरी सामाजिक व्यवस्था का जिम्मेदार आखिर कौन है? यह समाज ही तो है। गोपा जोशी कहती है कि "दलित स्त्री अपनी जाति, वर्ण और लिंग की वजह से सर्वाधिक दमित और शोषित रही है। इस शोषण-दमन की प्रकृति को समझने के लिए दलितों के शोषण-दमन को ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और पितृसत्तात्मक संदर्भ में देखना होगा।"[14]

निष्कर्ष: दलित स्त्रियों को अपनी अस्मिता, अपने आत्मसम्मान अपने स्वाभिमान के लिए स्वयं ही लड़ाई लड़नी होगी, यह लड़ाई न तो दलित पुरुष लड़ेगा और न ही सवर्ण स्त्री। सवर्ण स्त्रियों के उत्पीड़न का प्रमुख कारण जहाँ पर आर्थिक है, वहीं पर दलित स्त्रियों के शोषण का कारण आर्थिक से पहले सामाजिक है।इसलिए दलित स्त्रियों को मन में हिम्मत और एक हाथ में संविधान तथा दूसरे में शिक्षा को लेकर ही अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़नी होगी। दलित समाज की शिक्षित स्त्रियों इस लड़ाई में काफी सक्रिय हैं और कुछ हद तक सफल भी। दलित स्त्रिया अम्बेडकर और फुले के विचारों द्वारा एक ऐसे समाज की ओर अग्रसर हैं। जहाँ स्वाभिमान सम्मान और समानता के साथ स्त्री-अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. दलित चेतना साहित्य, सम्पा.- रमणिका गुप्ता, नियू पब्लिशर्स, नई दिल्ली
2. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, ओमप्रकाश बाल्मीकि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. दलित कहानी संचयन, चयन व सम्पा.- रामणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली पृ. सं.17
4. वहीं, पृ. सं.17
5. दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ. एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. दलित कहानी संचयन, चयन व सम्पा.- रामणिका गुप्ता, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली पृ. सं. 30
7. वही,पृ.सं.64-65
8. वही, पृ.सं.104
9. वही, पृ. सं. 17
10. वही,पृ.सं.127
11. वही, पृ.सं.141
12. वही, पृ.सं.145
13. वही पृ.सं.120
14. भारत में स्त्री असमानता, गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्व विश्वविद्यालय, नई दिल्ली पृ.सं.149